अध्याय - 1

भारतीय स्त्री जागराण, सामाजिक परिवर्तन एवं ऐतिहासिक विकास

अध्याय–एक

1.0. भारतीय स्त्री जागराण, सामाजिक परिवर्तन एवं ऐतिहासिक विकास

जागरण के शब्दार्थ को लेकर आज किसी को शंका नहीं है। मनुष्य के इंसानी जीवन व सामाजिक जीवन के एक ऐतिहासिक पडाव में आकर वह सोच विचार करने योग्य था और अपनी वैचारिकता एवं विवेक की क्षमता को लोकमण्डल में प्रस्तुत कर रहा था। कई विद्वानों ने परंपरागत मनुष्य के आधुनिक इंसान बनने की इस प्रक्रिया पर गंभीर चिंतन मनन किया था। उस चिंतन मनन की सामाजिक पेशकश, पृथ्वी व मानव जाति की खुशहाली व शांतिपूर्ण जीवन से प्रेरित थी। जागरूक मनुष्य की प्रशंसा पाश्चात्य जगत में पहले ही मिलती है।

अकेले मनुष्य के हस्ताक्षेप पर शंका जताते हुए आरंभकालीन चिंतकों ने सामाजिक संगठनात्मकता को बढावा दिया था। सामाजिक मनुष्य की संकल्पना इसी से प्रेरित थी। खुद के साथ दूसरों की मुक्ति चिंता खुशहाली का आग्रह सामाजिक मनुष्य की विशेषताएँ हैं।

पाश्चात्य जगत्, विशेषकर अमेरिका में सामाजिक संगठन की प्रक्रिया अठारहवीं शती से सूचित है। महज क्रांतिचिंतन के बल पर मनुष्य मात्र की समानता एवं सामाजिकता का सपना वहाँ पर तब से मिलता है। विविध सामाजिक संघर्षों व क्रांतियों ने मनुष्य जगत् को व्यापक तौर पर जागरूक

बनाया। भारतीय माहौल में इस तरह की बातें आज़ादी के संघर्ष एवं राष्ट्रमुक्ति के सपनों से जुड़ी हुई रहती हैं।

पाश्चात्य जगत् के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से भारतीय जागरण कुछ समय बाद, माने उन्नीसवीं शती में ही प्रारंभ हुआ था। उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों में सामाजिक जागरण की पृष्ठभूमि भारत में तैयार हो गई थी। लंबी समय तक गुलामी और अराजकता में पली देशी जनता अपनी मुक्ति और स्वतंत्रता की चिंता करने लगी थी और उसके परिणामस्वरूप छोटे–बडे मुक्ति संगठनों, धार्मिक एवं सामाजिक संघर्षों का रूपायन होने लगा था।

1.1. सामाजिक परिवर्तन एवं स्त्री जागरण

1857 का मुक्तिसंग्राम, जिसे गदर भी कहा जाता है, भारतीय परिप्रेक्ष्य में वह प्रथम ऐतिहासिक पड़ाव था, जिसमें भारतीयों का प्रतिरोध एवं स्वाभिमान संगठित रूप में सामने आया। जो चिंतन–मनन और जागरूकता तब तक आध्यात्मिक और वैचारिक स्तर पर वर्तमान थी, उसे सामजिक हित की दृष्टि से व्यापक एवं गौरवपूर्ण नज़र में आंकने की बातें इस मुक्ति संघर्ष से सामने आई। भले ही उसके कारणों व परिणामों पर मतभेद हो सकता है, फिर भी राष्ट्र या समाज को एकजुट होने की प्रेरणा देने में इस संघर्ष ने अहम कार्य किया था। भारत के भीतर पनपनेवाले समाज विरोधी तत्वों पर चिंतन के साथ विदेशी शक्तियों को भगाने तथा उनकी गुलामी से मुक्त होने की चाहत को इस संघर्ष ने सार्वजनिक बना दिया था। तत्कालीन समय के मुताबिक इसकी सार्वजनिकता

पर प्रश्न खड़ा किया जा सकता है, मगर परवर्ती भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक इतिहास में इसका गौरव एवं महत्व सर्वोच्च प्रेरणादायक रहा था।

इसमें शंका नहीं कि भारत में स्त्री जागरण सामाजिक एवं राष्ट्रीय जागरण का हिस्सा रहा था। पूरे समाज व संस्कृति के उन्नमन और जागृति के समय में ही स्त्रियों की समस्याओं पर भी ध्यान पडने लगा। साहित्य ने भी इस परिवर्तन को आँकने का यथावत् प्रयास किया। भारतेंदु युग में इस प्रवृत्ति का अंकन विद्वानों व इतिहासकारों ने रेखांकित किया है।

''भाव और विचार के क्षेत्र में महावीरप्रसाद द्विवेदी के पहले ही एक क्रांतिकारी भावना साहित्य में प्रवेश कर चुकी थी। राष्ट्र की पराधीनता तथा पतनोन्मुख गति से संघर्ष करने की स्वस्थ प्रेरणा हिंदी काव्य में भारतेंदु जी की रचनाओं द्वारा आ चुकी थी। उनके अन्य सामयिक साहित्यकारों ने भी इस गंभीर कर्तव्य की ओर ध्यान दिया। साहित्यकारों ने एक सामूहिक शीघ्रता से नयेपन की ओर खींचकर इस पुरानी परंपरा से साहित्य के सम्बन्ध को तोड दिया। व्यक्तिवादी चिंतन राष्ट्र और समाज के निकट आ गया तथा अनेक सुधारकों, सर्जनात्मक विद्रोही स्वरों ने काव्य के क्षेत्र में एक साथ प्रवेश किया। समुचा देश अपनी सामाजिक चेतना में एक नयी शक्ति का अनुभव कर रहा था।''[1]

आरंभिक ज़माने में स्त्री शिक्षा के प्रसार द्वारा मानसिक उद्धार का प्रयास हुआ था। शिक्षा को सार्वजनिक एवं सार्वदेशीय बनाने के लिए समाज सुधारकों

---

1. रमाकांत शर्मा, छायावादोत्तर हिंदी कविता, पृ. 18

ने आवाज़ उठाई। अंधविश्वासों के मारे भारतीय समुदायों में शिक्षा की रोशनी फैलाने के लिए कई समाज सुधारकों ने काम किया। हर इलाके में जागरण एवं उद्धार की बातें प्रचारित की गई।

मिली सूचनाओं के अनुसार, 1821 में चर्च मिशनरियों द्वारा भारत में 30 स्कूलों की स्थापना का निर्णय लिया गया था।[1] इस कार्य का दायित्व मिस मेरी आन कुक को सौंपा गया था। 1840 तक होते होते स्थापित छः विद्यालयों में 200 हिन्दू लड़कियों को दाखिल करने में यह संस्था कामयाब हुई। उन्नीसवीं शती के मध्य तक चर्च मिशनरियों के विद्यालयों में 8000 लड़कियों को शिक्षित करने की सूचना मिलती है।

उस समय की आबादी की तुलना में यह आंकडा उतना बडा नहीं है। आरंभिक कार्य की दृष्टि से इसका महत्व है, जो परवर्ती कार्यों के लिए भूमिका तैयार कर रहा था। इन कार्यों का क्रमशः विकास समकालीन संदर्भ तक देखने को मिलता है। गाँव और शहरी इलाकों के क्रमरहित तथा असंतुलित आंकडों के बावजूद 2001 तक भारत में स्कूल जानेवाली लड़कियों का आंकडा 54.16 प्रतिशत सूचित किया गया है।[2]

1.2. भारतीय जागरण-स्वतंत्रता संग्राम-स्त्री शिक्षा

अंग्रेज़ी हुकूमत के विरोध में हुए सामाजिक प्रतिरोध से ही भारतीय मानसिकता में ऐतिहासिक परिवर्तन देखने को मिलता है। आपसी बातों व

1. Sarojini Sahoo, Sensible Sensibility : A collection of essays on sexuality, feminity and literature, P. 165-166
2. वही, P. 167

सामुदायिक एकजुटता से गुलामी के विरोध में लड़ने की ताकत उसने हासिल की थी। इसी समय में शिक्षा का प्रसार भी होने लगा था, यद्यपि सामाजिक तौर पर उसका स्वरूप ठीक तरह से कारगर कदम नहीं हो पाया।

भारतीय जागरण के लिए विविध आयामी विकास आवश्यक था। उपनिवेश के विरोध करते समय ही देश के भीतर अंधविश्वासों, अत्याचारों तथा परंपरागत धारणाओं का ऐसा जंजाल व्याप्त था, जिससे मुक्ति पाने की आवश्यकता थी। इसके लिए शिक्षा की ज़रूरत थी। आनंदी भाई जोशी तथा पंडित रमाबाई के प्रयास इस संदर्भ में महत्वपूर्ण उभर आते हैं।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम तथा बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में ही स्त्री जागरण पर विद्वानों तथा समाज सुधारकों का ध्यान आकर्षित हुआ था। ध्यान देने की बात है कि इसकी पहल पुरुषों द्वारा की गयी थी। जैसे राधाकुमार ने बताया है कि, "If early attempts at reforming the conditions under which Indian women lived were largely conducted by men, by the late nineteenth century their wifes, sisters, daughters, proteges and others affected by compaigns such as that for women's education, had themselves joined in the movements"[1].

महत्वपूर्ण बात यह है कि सभी समुदायों को साथ रखने में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सक्षम रहा था। इस दृष्टि से स्वतंत्रता की कल्पना और सार्वजनिक जागरण के प्रयास ने मनुष्य को नए दिग्दर्शन के लिए तैयार किया

---

1. Radhakumar, *The History of doing an illustrated account of movements for women's Rights and feminism in India,* P. No. 11

था। इस समय के संग्रामों तथा सुधार कार्यों में स्त्री भागीदारी ज़रूरी थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि राष्ट्रीय, समाज सुधारकों तथा आंदोलनकारियों ने स्त्री–भागीदारी पर ध्यान दिया।

स्त्री भागीदारी को तय करने के पीछे कई कारण हैं। सामाजिक विकास के लिए नारी जागरण उसका महत्वपूर्ण कारण था तो साहित्यिक, सौन्दर्यात्मक तथा संवेदनात्मक स्तर पर स्त्री पक्ष को जानने तथा उसे समाज के सामने प्रकट करवाने के ऐतिहासिक दायित्व को लोगों ने समझा था। आरंभकालीन पत्र–पत्रिकाओं में स्त्री रचनाएँ कम होने पर भी, यह बताना कठिन है कि उन्होंने स्त्री विषय को छोडा था। बदले में, धीरे–धीरे स्त्री को सार्वजनिक जगह तक पहुँचने का दायित्व वे महसूस कर रही थी। आरंभकालीन कविगण तब भी उनकी स्त्री विषयक उपदेशात्मकता में अडिग थे। बताया जाता है कि द्विवेदी युग तक की पत्रिकाओं में स्त्रियों के लिए उपदेशात्मक और इतिवृत्तात्मक बातें परोसी जाती थीं, जो जागरण से बढ़कर सहन और त्यागमहिमा दिखाने का प्रस्ताव करती थी। पर इस प्रवृत्ति को भी नारी उद्धार की दृष्टि से देखा जा सकता है, क्योंकि सामाजिक उन्नमन के लिए स्त्री बोध निर्माण की बातें इसमें अंशतः ही सही, विद्यमान थीं। परवर्ती समय के नारी विकास की दृष्टि से इन पर इतिवृत्तातमकता तथा परंपरागत दृष्टिकोण का आरोप मौजूद है। पर यह आरंभिक प्रयास था और इनमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मौजूद थी।

सदुद्देशपरक होने के बावजूद पुरुषों द्वारा लिखा गया भारतेंदु–द्विवेदी साहित्य, स्त्रीपक्ष में आता नहीं है। पर ऊर्मिला, यशोधरा आदि की वेदना को शब्दबद्ध कराने की सराहना इस युग के साहित्यकारों को मिलती है, पर स्त्रियों तथा उपेक्षित जनविभागों की स्त्रियों की बातें तब भी साहित्य में उचित स्थान पर प्रतिष्ठित नहीं हो पाई।

सामाजिकता की दृष्टि से भारतीय माहौल तब भी अंधविश्वासों तथा धार्मिक पूर्वधारणाओं से ग्रस्त था। लड़कियों को स्कूल भेजने में उस समय में माँ–बाप या घरवाले झिझकते थे और उसे पारिवारिक सम्मान से जोडकर देखते थे। सार्वजनिक शिक्षा या स्कूली प्रशिक्षण से लड़कियों का दूर हो जाना उस युग में चिंताजनक बात मालूम पड़ती है। भारतेंदु हरिश्चन्द्र को उद्धृत करते हुए डॉ. वीर भारत तलवार ने इसकी पुष्टि की है। ''लड़कियों को पढ़ाने के लिए वे (शरीफ लोग) आमतौर पर घर में ट्यूटर रख लेते हैं। यह गृह शिक्षा अक्सर धार्मिक किस्म की होती है और पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान से इसका कोई संबंध नहीं होता। धार्मिक किताबों से उन्हें चरित्र संबंधी सिद्धांतों और घरेलु कर्तव्यों के पाठ पढाए जाते हैं। मुसलमान अपनी लड़कियों को कुरआन पढ़ाते हैं।''[1]

यह मानने की बात है कि उस समय की शिक्षा पूरी तरह उपनिवेशी प्रवृत्तियों तथा ज़रूरतों के अनुकूल थी, जिससे मुँह मोडकर देसी शिक्षा प्रणाली अमल करने की सिफारिश हर तरफ से की जाती थी। स्त्री शिक्षा के संदर्भ में

---

1. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 34

श्रृंगारी तथा उपदेशात्मक रचनाएँ पढ़ाने की माँग पर इतिहासकारों ने उदाहरण पेश किया है।[1] पर मतभेदों के चलते भी स्त्री शिक्षा क्षेत्र में नैतिक चरित्र, घरेलु प्रवृत्ति और धर्म संबंधी सीख ही विद्यमान रहती थी।

एक दृष्टि से अंधविश्वासों तथा परंपरागत पूर्वधारणाओं से छुटकारा पाने के लिए यह आरंभिक कदम था। पूरे भारतीय समाज व समुदायों की अपनी अपनी जीवन रीतियाँ तथा कुप्रथाएँ थीं, जिनसे बौद्धिक एवं सामाजिक दृष्टि से लड़ना ज़रूरी था।

1.3. अंधविश्वासों से लडाई

पुनर्जागरण काल में भारतीय समाज में विविध जनसमुदायों के संगठन खातिर समाज सुधारकों ने काम किया था। हर प्रांत और समुदाय में पुनरुत्थान का प्रयास हुआ था। भारतीय समाज की मध्यकालीन स्थिति शोचनीय थी। प्रशासनिक गुलामी के साथ देश की जड़ों में जातिपांति और अंधविश्वास मिला हुआ था। विविध प्रथाओं व जन अंध विश्वासों में जकडकर सामान्य इंसान दुस्थिति झेल रहा था।

स्त्रियों के विशेष संदर्भों को देखें तो यह समय आरंभिक स्त्री उत्थान का भी समय है। समाज की उन्नति के लिए स्त्रियों की दशा सुधारनी थी। इस बात को लेकर सभी समाज सुधारक सचेत थे। अतः स्त्री विरोधी तत्वों का पर्दाफाश, उन पर सचेत चिंतन–मनन और उन्हें हटाने का प्रयत्न पहले पुरुषों

---

1. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 38–39

की तरफ से शुरु हुआ था। सती प्रथा के विरोध में राजाराम मोहनराय, महिला शिक्षा, स्त्री अध्ययन आदि के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती, जातिपाँति, धार्मिक रूढ़ियाँ तथा व्यक्ति महिमा आदि पर स्वामी अरविंद, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद आदि के योगदानों पर आजकल कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता है।

नवजागरण के समय में अंधविश्वासों की लडाई प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों ढंग से हो रही थी। प्रत्यक्षतः वह सगुणात्मक था जिसमें सुधारवादियों तथा राष्ट्रीय आंदोलनकारियों की भूमिका थी। समुदाय, धर्म या जाति के भीतर जीवित मनुष्य आपस में मिलने जुलने लगा तो उसका परोक्ष लाभ यह हुआ कि लोग अपनी खासियतों के साथ दूसरे समुदायों पर भी सोचने लगे। परिणामस्वरूप खुद के सामुदायिक जीवन की कमियाँ व सीमाएँ उनके मन में प्रश्न बनकर खडी हो गई। शंका–आशंका की यह मनोवृत्ति भारतीय माहौल में आधुनिकता के लिए परिप्रेक्ष्य तैयार कर रही थी।

अंधविश्वासों से लडाई के वैयक्तिक, जातिपरक, धार्मिक, समुदायात्मक, सामाजिक, राजनैतिक आयाम हैं। व्यक्ति के उन्नमन को धीरे–धीरे महत्व मिलने लगा। व्यक्ति व समाज का द्वंद्व होने पर भी सामाजिक रूप में व्यक्तित्व का विकास महत्वपूर्ण था।

1.4. नवजागरण एवं स्त्री साहित्यिक हस्ताक्षेप

मध्यकालीन साहित्यिक परंपरा में भाषाओं की भक्त कवयित्रियों में मीरा, आण्डाल, अक्का महादेवी आदि पर प्रकाश मिलता है। उन्नीसवीं सदी के

नवजागरण के समय में गद्य युग के आरंभ की व्यापक तैयारियाँ हो रही थीं। बताया जाता है 1882 में पंजाब की ''सीमंतनी उपदेश (अज्ञात हिन्दू औरत) की किताब सामने आती है। इस किताब के संबंध में बताया गया है कि सीमंतनी उपदेश की 'अज्ञात हिंदू औरत' चाहे जो भी रही हो, इसमें शक नहीं कि वह पंजाब के धार्मिक–सामाजिक सुधारकों के विचारों और कामों से अच्छी तरह से वाकिफ थी और वैचारिक दृष्टि से उनके काफी निकट थी। यह भी पता चलता है कि वह अपने समय की काफी प्रतिष्ठित महिला थी जो बंबई में प्रार्थना समाज की सभाओं में व्याख्यान भी देती थी। इससे यह बात और भी अफसोस की है कि उसने अपना नाम छुपा रखा।''[1]

आगे यह भी बताया गया है कि अन्य सुधारवादी संगठनकारियों की तुलना में सीमंतनी उपदेश पतिव्रता धर्म की आलोचना करती है, इस बात की पुष्टि व सराहना भी डॉ. वीर भारत तलवार ने की है।

''सौ साल से भी ज़्यादा पहले लिखी गई इस किताब में आधुनिक नारीवादी चेतना की कई विशेषताएँ पनपती दिखाई देती हैं। उस वक्त स्त्रियों का कोई संगठन न होने के कारण और अपनी धार्मिकता के कारण भी लेखिका ने निस्सहाय स्त्रियों की मदद के लिए ईश्वर को पुकारा है – इस कैद में हम ज़िंदगी काटेंगी कब तलक रहबर कोई नहीं ऐ रब, तू खबर ले।''[2] ज़ाहिर है, पुरुष सुधारकों को शुक्रिया अदा करने पर भी वह उन्हें स्त्रियों का रक्षक नहीं

---

1. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 198
2. वही, पृ. 222

समझती। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पुरुषों के आगे बढ़ने को भी, उसने स्त्रियों के लिए यह कहते हुए बेकार माना कि ''एक के खाना खाने से दूसरे का पेट नहीं भरता है।'' यहाँ स्त्रियों की अलग सामाजिक स्थिति की तीखी आलोचना साफ है। स्त्रियों को जगाने के लिए उसने गज़लनुमा कई भजन बनाए जो नवजागरण के दौर में ब्रहमा तथा आर्यसमाजी भजनों से मिलते–जुलते थे। लेखिका पितृसत्तात्मक समाज को स्त्रियों के लिए जेलखाने के रूप में देखती है जो पूरी किताब में बार बार स्त्रियों की पराधीनता का मुख्य प्रतीक बनकर उभरा है। आगे की चर्चा में उन्होंने आधुनिक हिंदी की पहली लेखिकाओं के रूप में बंगाल की मल्लिका, बंग महिला को माना है।[1]

साहित्यिक इतिहास में इन बातों की चर्चा नहीं होती है, पर आधुनिकता एवं नवजागरण ने स्त्रीवाद के निर्माणात्मक विकास में प्रभाव डाला था। इस तरह की बातों ने साहित्यिक इतिहास के लिए भी भूमिका तैयार की थी।

सत्ता व राजनीतिक बातों में भारतीय इतिहास यद्यपि राणी लक्ष्मीबाई, रसिया सुलताना आदि नामों को समेटता है, तथापि नवजागरण के समय, विशेषकर कांग्रेज़ की स्थापना से लेकर राजनीति में स्त्री भागीदारी सुनिश्चित होने लगी। यह बताना कठिन है कि स्त्री भागीदारी निर्णयात्मक स्तर तक पहुँच पा रही थी। पर इस बात को लेकर समाज सुधारकों तथा राजनीतिज्ञों में कोई शंका नहीं थी कि राजनीति में स्त्री भागीदारी अनुपेक्षणीय है। 1985 में अंग्रेज़ी स्थापना के समय से लेकर इस विचार की पुष्टि की गई। प्रथम अध्यक्षा

---

1. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, पृ. 222

आनी बेसेंट के बाद सरोजनी नायडू का महत्वपूर्ण योगदान भी इस तरह इतिहास में सराहनीय पेश किया गया है। स्वतंत्रता संग्राम के समय में स्त्रियों को प्रेरित करने के काम में गाँधीजी स्वयं जुट गए थे। समाजों, संगठनों, सभाओं के आयोजनों के पीछे चहारदीवारी में कैद अंधविश्वासों में डूबी नारी जाति को बाहर लाने की तीव्र कामना की थी। ''सन् 1914 ई. में उन्होंने मद्रास में 'भारत जागो' शीर्षक से एक भाषण दिया था जिसमें भारतीय नारियों से अपनी दासता समाप्त करने, अशिक्षा समाप्त करने, बाल विवाह न करने और निम्न जातियों को सम्मानित स्थान प्रदान करने की अपील की थी। इससे समस्त देश में उत्साह की नयी लहर दौड गयी। मई 1917 में प्रथम महिला संघ की स्थापना हुई। यह संघ न धर्म की अवहेलना करना चाहता था और न उसके रूप को स्वीकार ही करना चाहता था। वह धर्म के आडम्बर को समाप्त कर उसे उदार एवं उपयोगी बनाने पर बल दे रहा था, ताकि नारियों के अन्य विश्वास और धार्मिक आडम्बर समाप्त हो सकें। 1920–30 के मध्य इस संस्था की कुल 87 शाखाएँ खोली गयीं, जिनसे नारी जागरण में बड़ी सहायता प्राप्त हुई।''[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों को संवैधानिक अधिकार हासिल हुआ। इसके अलावा स्त्री उन्नति के लिए दूसरा सरकारी इंतज़ाम भी होने लगा। महिला आयोगों की स्थापना इसका परिणाम था। विभिन्न राजनीतिक दलों के अपने–अपने महिला विंग का रूपायन, राजनीति में स्त्री भागीदारी, प्रशासनिक तथा अन्य क्षेत्रों में भी स्त्रियों का आगमन बढ़ने लगा। पर तब भी संविधान में

1. डॉ. उमा शुक्ल, भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, पृ. 18

दावा किए गए वादों की पूर्ति नहीं हुई। नियमों व प्रावधानों के बावजूद सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा अन्य क्षेत्रों पर स्त्री हाशियाकरण चलता रहा। कानूनी तौर पर दहेज, सती प्रथा, बाल विवाह आदि पर रोक लगा दिया गया। धार्मिक एवं सामुदायिक रूढ़ियों में काफी स्त्री विरोधी है, उन्हें भी दण्डनीय घोषित की गई। विधवा विवाह या पुर्नविवाह, उत्तराधिकार या संपत्ति का भी स्त्रियों को समान अधिकार, गर्भपात संबंधी अधिनियम, वेश्यावृत्ति पर रोक, बलात्कार संबंधी कानून आदि जारी किए गए। यहाँ तक बीसवीं सदी के अंत तक त्रिपर्तीय प्रशासनिक प्रणाली लागू की गई और पंचायत आदि में पैंतीस प्रतिशत स्त्री आरक्षण लागू किए गए। इस विषय में घरेलू अत्याचारों को रोकने तथा कार्यालयों में स्त्री सुरक्षा आदि बहुचर्चित बन गए।

तमाम प्रयासों के बावजूद सामाजिक, राजनीतिक तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में स्त्री का दोहरा दर्जा अब भी चालू है। यह माना जाता है कि भारतीय माहौल में उन्नीस सौ पचासी के बाद स्त्री जागरण में ऐतिहासिक परिवर्तन आया। ऐतिहासिक एवं परंपराबद्ध चिंतनों को पलटकर स्त्री जागरण का नया दौर भारत में तब से तेज़ बन गया। पाश्चात्य देशों में हुए स्त्री चिंतनों और स्त्री आंदोलनों का प्रभाव इस विकास में कार्य करने वाला मुख्य तत्व है। भले ही स्त्रीवादी लहरें तथा स्त्री नारों की बौच्छारें उसी अर्थ में भारत में मिलता है, पर विविध ढंगी स्त्री चिंतनों, नारों, राजनीतिक बातों तथा साहित्यिक हस्ताक्षेपों से भारतीय माहौल अपरिचित नहीं था। साहित्य में स्त्री चिंतन का गहरा प्रभाव इस दौर में उपन्यास और कहानियों में मिलता है।

पुरानी स्त्री विषयक कविताएँ स्त्री पक्ष बोलने में कुछ पीछे की नहीं थीं। पर विचार और विचारधारा के फैलने से कविता के नए आधार और प्रतिमान रूपायित होने लगें। स्त्रीवादी चिंतकों ने वैचारिक व राजनीतिक धरातल पर स्त्रियों के अस्तित्व व अस्मिता के चिंतन–मनन के द्वारा जगजीवन के लिए नया समवाक्य जोडा।

1.5. पाश्चात्य चिंतन मनन का प्रभाव

यह बताना निराधार होगा कि भारतीय स्त्री चिंतन अपने आप में फलाफुला है। यह बताना भी ठीक नहीं है कि पाश्चात्य सिद्धांतों व विचारों के अनुकरण से ही भारतीय स्त्री जागरण संभव हुआ। कई पक्षों में भारतीय स्त्री जागरण पाश्चात्य प्रभावित दिखता है तो कई बार वह खुद ब खुद काबिलियत हासिल करता नज़र आता है। उसकी अपनी अलग पहचान एवं कार्यविधियाँ हमेशा रही थीं।

विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि भारत में स्त्री चिंतन की अलग एवं स्पष्ट धारा कभी स्फूर्त नहीं हुई थीं। यहाँ का स्त्री–जागरण हमेशा सामाजिक जागरण का अंग था। सामाजिक एवं ऐतिहासिक जागरण के सिलसिले में ही यहाँ पर स्त्री उन्नमन की चर्चा होती थी और उसी के तहत ही उसे सामाजिक एवं राजनीतिक ध्यान मिलता था।

पर पाश्चात्य जगत की स्त्रीवादी लहरों की बातें तथा उस संबंधी विचार विमर्श भारतीय समाज में हमेशा सुनने को मिलते हैं। सामान्य जानकारी बढ़ाने

तथा स्त्री जागरण के वैश्विक परिदृश्य को समझने के लिए स्त्रीवादी वैचारिक चिंतनों को समझना ज़रूरी है।

1.6. स्त्री चिंतन की विविधता

यद्यपि स्त्री और उनका योगदान मनुष्येतिहास तक पुराना है, तथापि उपेक्षित तथा असहाय रहने की स्थितियों के कारण उनका स्थान इतिहास में दर्ज नहीं हो पाया। पाश्चात्य नवोत्थान के समय में वहाँ पर स्त्री जाति के सोच विचार में व्यापक परिवर्तन आए। इस तरह अपने अधिकारों तथा अस्मिता के लिए स्त्री संघर्ष शुरु हुआ। बताया जाता है कि 1792 में मेरी वोलसनक्राफ्ट द्वारा लिखी 'द विन्डिकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन' के साथ पाश्चात्य जगत में स्त्री समस्याओं पर व्यापक ध्यान आकर्षित हो गया। अठारहवीं शदी से शुरु इस आन्दोलनात्मक दर्शन को रेनेसां के अंग मानने को सभी लोग तैयार नहीं है। समर्थकों की राय में स्त्री जागरण अकेला या अलग दर्शन नहीं है, समस्त मानव समुदाय को प्रभावित करनेवाला है। स्त्री की सामाजिक पतितावस्था, उसे हमेशा संघर्ष के लिए प्रेरित करती थी। अठारहवीं शती से लेकर इसकी छाप ऐतिहासिक तौर पर प्रकट होने लगी।

स्त्री उत्थान, स्त्री उन्नमन, स्त्री भागीदारी, स्त्री सशक्तीकरण, स्त्रीवादी रूख, स्त्री चिंतन आदि कई शब्द हैं, जो स्त्री जागरण के संबंध में काम आये हैं। ये सब स्त्री की सामाजिक, सांस्कृतिक, वर्गीय तथा राजनैतिक उन्नति की चर्चा में काम आनेवाले हैं। हालांकि इनके अर्थ संकेतों से विविध अर्थ सूचित किए जाते हैं, ये सब स्त्री जागरण के व्यापक परिप्रेक्ष्य के लिए उपयोगी हैं।

स्त्री जागरण के लिए सैद्धांतिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य तैयार करने में स्त्रीवाद की ऐतिहासिक भूमिका है। नारीवाद के दूसरे चरण से लेकर ही नारीवादियों ने दुनियाभर की स्त्रियों से यह आह्वान किया कि उन्हें अपने बारे में खुलकर लिखना चाहिए। जैसा कि हैलन सिसु ने बताया है – "Women must write herself : must write about woman and bring women to writing from which they have been driven away. So violently as from their bodies for the same reasons, by the same law, with some fatal goal, women must put herself into the text - as into the world and into history by her movement."[1]

पाश्चात्य समाज में स्थापित स्त्रीवाद या नारीवाद के विकास की तीन लहरें बताई जाती हैं। पहली लहर स्त्री जाति के सामाजिक, आर्थिक अधिकारों के लिए कटिबद्ध थी। इस समय में विविध प्रकार के न्यायिक, संवैधानिक अधिकारों के लिए आंदोलन करके स्त्रियों ने कानूनी प्रावधान हासिल किए थे। इसी समय में सिमोन द बोअर की किताब 'दि सेकन्ड सेक्स' (हिंदी में 'स्त्री उपेक्षिता') लिखी गई।

दूसरी लहर की विशेषता यह है कि यहाँ पर स्त्रीवादी चिंतन व्यापक हो गया। व्यापक होने का यह परिणाम भी हुआ कि वे विभिन्न शाखाओं में उपलब्ध हो गई। उग्रवादी, समाजवादी, उदारवादी, मार्क्सवादी, समयौनिक नारीवादी आंदोलनों का यह समय था। सैद्धांतिक, अकादमिक तथा दार्शनिक

---

1. Helen Cixous in The Laugh of Medusa, Women and Dilues, *Reading in recent Feminist philosophy,* P. 75-87

स्तर पर इन सभी शाखाओं का वैचारिक प्रभाव दिखता है। अकादमिक एवं साहित्यिक जगत में इनका प्रभाव प्रकट होने लगा और विविध ढंगी रचनाएँ और सर्जनात्मक हस्तक्षेप सामने आए।

तीसरी लहर का समय उन्नीस सौ अस्सी के बाद का समय है। इस समय में लिंग–यौन भेद, यौनता पर सामाजिक दृष्टि, विभिन्न यौनिकता, समयौनिकों तथा हिजडाओं की समस्याएँ आदि भी मिलाकर विशाल परिप्रेक्ष्य में नारी समस्याएँ चर्चा में आई। यही समय है जिसमें–समलिंगी नारीवाद, दलित नारीवाद, अश्वेद नारीवाद जैसे प्रकरण भी केन्द्रीय स्थान पर चर्चित होने लगें।

विद्वानों के कहे अनुसार ''बीसवीं शती के साठ के दशकों के बाद स्त्रीवादी मान्यताओं में अनेक अवधारणाएँ विकसित हुई। उदारवादी, उग्रवादी, सामाजिक, मार्क्सवादी तथा समयौनिक नारीवाद की चर्चा किताबों में मिलती है। इनके अलावा हर एक प्रदेश, समुदाय, राज्य तथा देश की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल भी स्त्रीपक्ष चिंतन की नई किरणें सामने आई।

लहरों पर ध्यान देंगे तो यह मालूम हो जाता है कि पहली लहर में स्त्री अधिकारों की स्थापना पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। दूसरी लहर में आकर यह ऐतिहासिक दृष्टि से पितृसत्ता का मुकाबले करने के लिए तैयार हो गया। इस समय में उसका प्रतिरोधी स्वर बढ़ गया। पुरुषसादवाद, सामाजिक पूर्वधारणाएँ, सामुदायिक अंधविश्वास, घरेलू हिंसा आदि पर ध्यान मिला। तीसरी लहर पर आकर लिंग–यौन भेद भावों पर भी चर्चाएँ होने लगीं। स्त्रियों के साथ

पुरुषों पर भी स्त्रीवादी दृष्टि पड गई। उत्तर नारीवाद व्यक्ति के रूप में भी स्त्री की आज़ादी, सबलीकरण आदि पर केन्द्रित बातों को उठाता है।''[1]

अर्थात् सामूहिक चेतना में आई नवता ने ही सामाजिक उन्नमन का रास्ता खोला और उसमें दूसरे विषयों की जागृति के साथ स्त्री जागृति का भी द्वार खुल गया। यह देखने को मिलता है कि यह जागरण बहुत धीमी गति का था।

अंधविश्वासों में डूबे हुए भारतीय समाज में परिवर्तन लाना उतना आसान नहीं था। स्त्रियों के आगे पारिवारिक या घरेलू कैदी ही समस्या नहीं थी, हर पल उन्हें विविध ढंगी विश्वासों, रीति रिवाज़ों तथा पूर्व धारणाओं को झेलना पडता था। असलीयत यह भी है कि स्त्री उद्धार के बिना सामाजिक, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय जगत का उद्धार असंभव मालूम हो रहा था। इस तरह स्त्री उन्नमन सामाजिक सुधारकों की कार्यसूची में महत्वपूर्ण स्थान का मुद्दा बन गया।

जीवनाधिकार की दृष्टि से सभी इंसान समान है। पर लिंग, धर्म, जाति, वर्ग, प्रांत–प्रदेश, राष्ट्रीय अमिता, जैविक स्थितियाँ, यौन अस्मिता आदि अनेकों तत्वों को कारण बनाकर भेदभाव करनेवाले समाजों में स्त्री सहित समस्त पतितों, उपेक्षितों तथा भेदभाव सहनेवालों को मिलाकर विशाल मुक्ति का आंदोलन शुरु करना नारीवाद का लक्ष्य है। शंका नहीं कि समयानुसार नारीवाद का लक्ष्य व्यापक बताया जा रहा है।

1. Dinesh Kanwar, *Feminism and Post Feminism*, P. 17-18

समकालीन समय उत्तर नारीवाद का है। सैद्धांतिक धरातल पर नारीवादी मान्यताओं तथा उसके ऐतिहासिक रवैयों पर उत्तर नारीवादी मान्यताएँ प्रश्नात्मक दृष्टि डालती हैं। वह खुद के यश–गान पर विश्वास नहीं करता। उल्टे आत्मविमर्श के लिए तैयार होता है।

यह बताना है कि इन शाखाओं की मान्यताओं से संसार भर के नारी जागरण की प्रवृत्तियाँ प्रभावित हैं। भारतीय प्रसंग भी इसमें आता है। पर भारतीय प्रसंग की अपनी खासियतें, प्रादेशिक विशेषताएँ इसके साथ मिलकर अध्ययन करता है।

1.7. स्त्री, स्त्रीपन और स्त्रीवादी

नारीवादी चिंतनों ने स्त्री के तीन विभिन्न रूपों की चर्चा की है। वे हैं, female, feminine और feminist। जीवन कार्यों के व्यवहारों एवं संकल्पों के आधार पर इसमें हर एक की पहचान होती है। साहित्य, कला या रचना समाज का आईना है, आजकल इन तीनों स्वरूपों के उदाहरण कविता या दूसरी विधाओं में संभव हैं। कई लेखिकाएँ अपने को 'नारीवादी' घोषित करने का विरोध करती हैं तो कई अपने को स्त्री पक्षी समझती हैं।

हिंदी की लेखिकाओं तथा कवयित्रियों पर दृष्टि डालने पर यह कहना उचित होगा कि कविता सहित समस्त विधाओं में उपर्युक्त स्त्रीत्व के सभी रूप विद्यमान है, जो समय–काल–संदर्भ तथा लेखिका के अनुसार बदलता दृष्टिपात होता है। अपनी स्त्री को लेखन के सैद्धांतिक धरातल से उठाकर व्यावहारिक

जीवन तक पहूँचानेवाली कवयित्रियाँ नारीवादी चिंतन के निकट दिखती हैं तो अपने स्त्रीत्व में सिमटी रहनेवाली लेखिकाएँ भी हैं। उन सबकी बातों में 'स्त्री' होते–रहने तथा लिंग भेद वाले समाज में जीवित रहने की आशंकाएँ तथा शिकायतें हैं। व्यापक दृष्टि में सभी लेखिकाएँ स्त्री लेखन या स्त्रीवादी चिंतन में इस लिंग शामिल होती मालूम पडती हैं। निराकरण करने पर भी उनकी रचनाएँ स्त्रीत्व, स्त्री अस्मिता तथा पतिता व सत्ता पर सोचती–शिकायत करती तथा समाधान ढूँढ़ती नज़र आती हैं।

1.8. भारतीय स्त्री जागरण-विकास के विविध आयाम

वैदिक समय में स्त्री दार्शनिकों की सूचना है, जिन्होंने अपने चिंतन के संस्पर्श से विद्वानों तक को प्रभावित किया था। पर वैदिक काल के बाद भारतीय प्रसंग में स्त्री की गणना दोहरी हो गई। इनी–गिनी भक्त कवयित्रियों के अलावा मध्यकालीन भक्ति साहित्य में स्त्रियों का हस्तक्षेप कम रहा। कई प्रदेशों में मातृदायक सामुदायिक व्यवस्था की स्थापना थी, वे भी धीरे–धीरे खत्म हुई। आधुनिक काल के आरंभ तक स्त्री की पतितावस्था एवं दोहरी स्थिति समाज में बहुत बडी समस्या बन गई। देवदासी प्रथा, स्त्री प्रथा, बालिका विवाह, विधवाओं की उपेक्षा, नारी श्रम शोषण, घरेलू उत्पीडन, यौन–उच्छृंखलताएँ आदि से समाज उलझने लगें।

सामाजिक सामुदायिक जागरण के लिए पहले शिक्षा का विशेषकर स्त्री शिक्षा का इंतज़ाम किया गया। ''लड़कियों के लिए स्कूल सबसे पहले अंग्रेज़

तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा 1810 में शुरु किए गए। 1827 तक मिशनरियों द्वारा हुग्ली जिले में 12 कन्या पाठशालाएँ चलाई गयी।''[1]

इक्कीसवीं शती तक होते होते समाज सुधारकों, प्रसारकों तथा नागरिकों को इस बात पर शंका नहीं है कि स्त्री उत्थान सामाजिक उन्नति की धुरी हैं, जिसके बिना समाज में सकारात्मक परिवर्तन और शांतिपूर्ण जीवन संभव नहीं है। पर यह भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद तथा शोषण की अवस्था के चलते पूँजीवाद की यह वापसी का समय है, जिसमें स्त्री को फिर से नए तरीकों पर 'पूँजी' होना पड़ता है। इन अडचनों तथा मुश्किलों को समझनेवाली स्त्रियाँ, अपने साथ जाति के उत्कर्ष के लिए सोचती हैं और कार्य करती हैं। समकालीन कवयित्रियाँ भी इस मोर्चे में शामिल है।

राजनीति में स्त्री भागीदारी उचित पैमाने पर नहीं है। फिर भी कभी कभार यह आश्चर्य कर देनेवाली बात है कि राजनीति में स्त्रियों की भागीदारी है और उसका दखल समकालीन परिदृश्य में दर्ज हो जाता है। पर यह दावा भी नहीं किया जा सकता है कि नारी को अपने श्रम और सामाजिक दृष्टि से सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक प्रतिनिधित्व ठीक पैमाने पर मिल रहा है।

1.9. हिंदी कविता और स्त्री जागरण का परिप्रेक्ष्य

पहले ही बताया गया कि स्त्री जागरण के लिए पुरुषों का भागदेय महत्वपूर्ण है। हिंदी कविता के इतिहास में मध्यकालीन सूफी संत जायसी ने

1. राधा कुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800–1900, पृ. 30

'पद्मावती' को केन्द्र बनाकर महाकाव्य लिखा। यद्यपि उनका ध्येय स्त्री जागरण तो नहीं था, पर नायिका को प्रमुखता देने की बात पर वे महत्वपूर्ण कवि हैं। भारतीय साहित्येतिहास में कालिदास से शुरु इस काव्यरीति को मध्यकालीन हिंदी कविता ने स्वीकृति दी है। आगे श्रृंगारी कवियों ने भी नायिका भेद, नायिका सौन्दर्य, नखशिख प्रतिपादन आदि को सामने रखा। स्त्री चिंतन के इतिहास को खोलनेवाली आज की पीढ़ी इन सब प्रयासों पर पुनः दृष्टि डालती है और इनकी स्त्रीपक्षी या विपक्षी आलोचना पेश करती है।

आधुनिक काल की खडीबोली कविता तक पहूँचते पहूँचते 'प्रियप्रवास' की राधा 'साकेत' की ऊर्मिला तथा 'उर्वशी' की उर्वशी आदि परंपरा छोडकर बाहर आनेवाली नायिकाएँ सिद्ध हुई। उर्वशी तक आते–आते यह प्रयास काफी अग्रसर होता हुआ मालूम पडा है। पर इस समय में कवयित्रियों की संख्या बहुत कम है। यहाँ तक छायावाद का स्तंभ होकर भी महादेवी, कविता में अपने साहस को पूरी तरह उतार नहीं सकी। गद्य की तुलना में उनका पद्य अप्रत्यक्ष पर ही बोलता नज़र आता है।

महादेवी के बाद काफी लंबे समय तक हिंदी साहित्यिक जगत में कवयित्रियों का महत्वपूर्ण काम नहीं मिलता। सप्तकीय परंपरा के दो प्रतिनिधित्व–शकुंत माथुर और कीर्ति चौधरी के सीमित प्रयास ही पुस्तकों में मिलते हैं। बीच बीच में इनी गिनी कविताएँ लिखनेवाली महिलाओं के नाम और कार्य साहित्येतिहास में दर्ज नहीं हो पाए।

बीसवीं सदी के सत्तर के दशकों से हिंदी कविता में स्त्री जागरण का ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण समय शुरु हुआ। यही समय है जिसमें विभिन्न ढंगी कवयित्रियाँ, विभिन्न तबके से काम करने लगीं और विविध विषयों पर भी प्रकाश पडने लगा। कात्यायनी, अनामिका, गगन गिल, निर्मला गर्ग, निर्मला पुतुल आदि यहाँ पर नामी हैं।

उपर्युक्त कवयित्रियाँ समकालीन हैं, जो अपने कार्यक्षेत्र में कार्य करनेवाली हैं। भले ही पाश्चात्य जगत चिंतन एवं अकादमीक माहौल में आधुनिकता खत्म हो गई है। आगे उत्तराधुनिकता या उत्तर उपनिवेश आदि प्रवृत्तियों पर खास चर्चा चल रही है; भारतीय नवजागरण के ऐतिहासिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उनकी चर्चा भी यहाँ पर उचित ठहराई जाती है। कुछ लोग भारतीय आधुनिकता या उत्तराधुनिकता को इसलिए नकारते हैं कि उनके अनुसार पाश्चात्य सैद्धांतिक अवधारणा को उसी मायने पर भारत में लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिए भारतीय सामाजिक या जागरणमूलक परिसरों को देख लेना अनिवार्य है। साहित्य के स्त्री हस्तक्षेपों के अध्ययन के समय में इस तरह का रवैय्या अपनाना पड़ता है। विलंब के बाद ही सही, हिंदी में भी सी स्त्री लेखन के बहुआयामी प्रयत्नों को रूपायित करनेवाली रचनाएँ एवं पंक्तियाँ उपलब्ध होती हैं – यह बड़ी बात है। अतः ऐतिहासिक प्रयासों की दृष्टि से आगे के अध्यायों में स्त्री जागरण की परिपोषक, समकालीन कवयित्रियों पर भी चर्चा है। इस अर्थ में आधुनिक जागरण तथा स्त्री जागरण मूलक गतिविधियाँ आज भी भारतीय समाज एवं साहित्य में लागू हैं।